RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2024



RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रास्तो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारत के राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलन के योद्धा लाला लाजपत राय

रामस्वरूप गढ़वाल
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

लाला लाजपत राय का जन्म सन् 1865 में हुआ। 1885 में वकालत उत्तीर्ण करने के उपरान्त वे शीघ्र ही पंजाब के अग्रगण्य वकीलों में गिने जाने लगे। सन् 1888 में उन्होंने कांग्रेस में प्रवेश किया और कुछ ही समय में अपने समय के सबसे प्रभावशाली सार्वजनिक कार्यकर्त्ता बन गए। लाला जी का व्यक्तित्व विद्वत्ता, संगठन-शक्ति और सामाजिक सेवाभाव का अद्भुत समन्वय था। 1928 में उनकी मृत्यु पर गांधी जी ने कहा ''लाला लाजपत राय मर चुके हैं, लाला जी अमर रहें। लाला जैसे व्यक्ति तब तक नहीं मर सकते जब तक भारतीय आकाश में सूर्य चमक रहा है; लालाजी एक व्यक्ति नहीं, संस्था हैं।''

उनकी देशभक्ति की विशेषता यह थी कि उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी। उनका राष्ट्रवाद वस्तुत: विश्व-मानवतावाद से प्रेरित था। कांग्रेस के इतिहासकार पट्टाभिसीतारमय्या ने लिखा है—

''कांग्रेस के पुराने पूज्य पुरुषों में लाला लाजपत राय का सार्वजनिक व्यक्तित्व महान् था। वे जितने बड़े कांग्रेस-सेवक थे, उतने ही बड़े समाज-सुधारक भी थे।'' उन्होंने विपिनचन्द्र पाल और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर देश की स्वतन्त्रता-चेतना को उभारने का कार्य किया।

सन् 1896 में उत्तरी भारत तथा 1899 में राजपूताना के भीषण अकालों में उन्होंने दिन-रात पीड़ितों की सेवा की। 1907-1908 में बिहार एवं संयुक्त प्रान्त के अकाल में उनकी सेवाओं की विदेशी प्रशासन ने भी प्रशंसा की। सन् 1905 की बनारस कांग्रेस में वे एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्रवादी नेता के रूप में स्थापित हुए। पंजाब में राष्ट्रवादी चेतना का वही स्थान उन्हें प्राप्त हुआ, जो महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक को।

लाला लाजपत राय ने राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी आन्दोलन, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा संवैधानिक आन्दोलन को सक्रिय समर्थन दिया। अमेरिका प्रवास के समय उन्होंने 'इंडियन होम रूल लीग' तथा 'इंडियन इन्फॉर्मेशन ब्यूरो' की स्थापना की और 'यंग इंडिया' नाम से एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया।

अमेरिका में रहते हुए उन्होंने भारतीय मजदूरों को संगठित करने के लिए 'इंडियन लेबरर्स एसोसिएशन' की भी स्थापना की। वहाँ उन्होंने दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे— 'यंग इंडिया' और 'इंग्लैंड्स डेट टू इंडिया' जिनके द्वारा उन्होंने भारत के पक्ष में विश्व-स्तरीय जनमत तैयार किया।

महायुद्ध के बाद जब वे भारत लौटे, तो पंजाब में लागू सैन्य शासन (मार्शल लॉ) और अमृतसर

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

का जलियाँवाला बाग हत्याकांड देखकर उनके हृदय में तीव्र आक्रोश उत्पन्न हुआ। सितम्बर 1920 में कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में उन्हें सभापति चुना गया। इसी अधिवेशन में महात्मा गांधी ने अपना असहयोग आन्दोलन प्रस्तुत किया। उसी वर्ष नागपुर अधिवेशन में लाजपत राय ने गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम का समर्थन स्वीकार किया।

चूँकि इस आन्दोलन में सरकारी स्कूलों-कॉलेजों का बहिष्कार मुख्य कार्य था, इसलिए उन्होंने लाहौर में 'द नेशनल कॉलेज' की स्थापना की तथा 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' आरम्भ किया, जो 'लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' की तर्ज पर तैयार किया गया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने मात्र दस दिनों के भीतर 'तिलक स्वराज फण्ड' के लिए लगभग नौ लाख रुपये एकत्र कर दिखाए। उनकी महान देश सेवाओं का फल यह हुआ कि वर्ष 1926 में उन्हें 'हिन्दू महासभा' का अध्यक्ष चुना गया।

सन् 1928 में लाहौर में साइमन कमीशन के बहिष्कार हेतु विशाल जुलूस निकाला गया। उसी समय एक गोरे सिपाही द्वारा की गई लाठी-मार से वे गंभीर रूप से घायल हो गए। उन्होंने भविष्यवाणी की— ''मेरे शरीर पर पड़ा प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन में एक कील सिद्ध होगा।''

17 नवम्बर 1928 को उनका देहान्त हो गया, किन्तु उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और वे इतिहास में 'शेर-ए-पंजाब' के रूप में अमर हो गए। उनकी आत्मकथा हिन्दी में प्रकाशित हुई। उन्होंने 'पंजाबी', 'वन्दे मातरम्' (उर्दू) तथा 'द पीपल' नामक तीन समाचार-पत्र निकाले जिनके माध्यम से उन्होंने स्वराज का संदेश दिया।

उन्होंने 'अनहैप्पी इंडिया' नामक पुस्तक लिखी, जो कैथरीन मेयो की 'मदर इंडिया' का प्रबल उत्तर थी। उन्होंने उर्दू में 'तवारीखे हिन्द' नामक पुस्तक लिखी जिसका हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है। उन्होंने श्रीकृष्ण, अशोक, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, गुरुदत्त, मेज़िनी और गैरीबाल्डी की संक्षिप्त जीवनियाँ लिखीं। इन जीवनियों से उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और प्रभावकारी शैली का परिचय मिलता है।

सन् 1908 में उन्होंने 'दि स्टोरी ऑफ माय डिपोर्टेशन' नामक पुस्तक लिखी जिसमें बर्मा की जनता के रीति-रिवाज और जीवन-पद्धति का वर्णन किया गया है।

राजनैतिक विचार

लाला लाजपत राय भारतीय राष्ट्रवाद के उन महान प्रवर्तकों में थे जिनके जीवन का ध्येय भारत की स्वतन्त्रता था। उनके लिए राष्ट्रवाद कोई सैद्धान्तिक या भावनात्मक जुमला नहीं था, बल्कि उसका अर्थ थी देश के प्रति सम्पूर्ण समर्पण, उसके लिए संघर्ष, उसके हित में त्याग तथा आवश्यक होने पर अपने प्राणों का बलिदान। यही कारण है कि उन्होंने जीवन भर यही कार्य किया, कष्ट सहे और अन्त में देशहित में अपना सर्वोच्च बलिदान भी दिया। लाजपत राय ने राष्ट्रवाद की व्याख्या को नवीन रूप दिया और यह नया अर्थ राष्ट्रीय आन्दोलन को नयी दिशा प्रदान करता हुआ आगे बढ़ा।

उनका मत था कि भारत जो कि विदेश सत्ता के अधीन है, उसकी राजनीति का एकमात्र स्वरूप राष्ट्रवाद ही हो सकता है। एक स्वतन्त्र देश में राजनीति विभिन्न रूपों में उभर सकती है जैसे उदारवाद, रूढ़िवाद, लोकतंत्रवाद, समाजवाद, दक्षिणपंथ, वामपंथ आदि, परन्तु एक पराधीन देश में इन मतों और दलों का कोई वास्तविक स्वरूप सम्भव नहीं। परतन्त्र देश का राजनीतिज्ञ ऐसी अलग-अलग विचारधाराओं में

बँधकर सार्थक सेवा नहीं दे सकता क्योंकि वहाँ प्राथमिक आवश्यकता राष्ट्रीय स्वाधीनता की है।

लाजपत राय के लिए देशभक्ति केवल भावनात्मक आवेग नहीं, बल्कि न्याय और स्वतंत्रता के लिए आत्मीय तथा गहन प्रेम थी। इस प्रेम का मूल भाव आत्मसम्मान से जुड़ा था। वे भारत के गौरवपूर्ण इतिहास से प्रेरणा लेते थे और उस प्रेरणा को राष्ट्रवाद के सिद्धान्त से जोड़ते थे। उनके मत में ब्रिटिश शासन ने देश के इतिहास में सर्वाधिक नैतिक अध:पतन लाया है और भारतीय समाज को न केवल राजनैतिक रूप से दबाया बल्कि नैतिक रूप से भी गिराया।

लाजपत राय का राष्ट्रवाद समानता, न्याय और स्वतंत्रता पर आधारित था। वे जाति और रंग पर आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव के घोर विरोधी थे। ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और राज करो' नीति ने उन्हें अत्यन्त दु:खी और क्रोधित किया। वे यह मानते थे कि अंग्रेजों की दमनकारी नीति ही भारत में क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के उदय का मुख्य कारण बनी, क्योंकि जब किसी राष्ट्र के स्वाभाविक अधिकारों का दमन किया जाता है तब स्वाभाविक रूप से प्रतिरोध उत्पन्न होता है। लाजपत राय विदेशी शासन की इस दमन नीति के विरुद्ध निर्भीक होकर खड़े हुए और यह घोषणा की कि प्रत्येक राष्ट्र को स्वतंत्र और सम्प्रभु होने का सहज अधिकार है, और इस अधिकार में किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप न तो उचित है और न नैतिक।

उनके लिए स्वराज्य केवल शासन की व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की संपूर्ण व्यवस्था का नाम था। स्वराज्य का अर्थ था कि जनता स्वयं अपनी शासन व्यवस्था चलाए और राष्ट्र के सभी वर्गों तथा सम्पूर्ण मानव समाज के हितों को ध्यान में रखकर व्यवस्थाएँ बनाए। उनके राष्ट्रवाद में किसी एक जाति या वर्ग का कोई स्थान नहीं था; वह सम्पूर्ण देश के लोगों का राष्ट्रवाद था। लाजपत राय का राष्ट्रवाद उन्नीसवीं शताब्दी के इटली के राष्ट्रवादियों से मिलता-जुलता था, जहाँ यह विचार प्रमुख था कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने आदर्श निर्धारित करने और उन्हें क्रियान्वित करने का नैसर्गिक अधिकार है और इस अधिकार में हस्तक्षेप करना अन्याय है।

यद्यपि लाजपत राय का लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता था, परन्तु वे तत्कालीन परिस्थितियों के मूल्यांकन से विचलित नहीं हुए। वे यह समझते थे कि उस समय परिस्थितियाँ पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए तुरंत अनुकूल नहीं, अत: उन्होंने ब्रिटेन के साथ पूर्ण संबंध-विच्छेद की जिद नहीं की और गृह-शासन या औपनिवेशिक स्वराज्य को एक व्यावहारिक विकल्प माना। स्पष्ट है कि उनका राष्ट्रवाद आदर्शवादी होने के साथ-साथ अत्यन्त व्यावहारिक था।

लाजपत राय ने दादाभाई नौरोजी और रमेश चन्द्र दत्त की आर्थिक विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए इंग्लैंड की आर्थिक शोषण नीति का तीव्र विरोध किया। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश शासन ने भारतीय व्यापारियों, किसानों और मजदूरों को आर्थिक रूप से जकड़ रखा है। एक शताब्दी से भी अधिक समय तक ब्रिटिशों ने भारत के आर्थिक संसाधनों को नष्ट किया और देश को रसातल में पहुँचाया। उनके अनुसार ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने न केवल भारत को आर्थिक रूप से तोड़ा, बल्कि राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक रूप से भी दुर्बल कर दिया।

स्वदेशी की अवधारणा

लाजपत राय स्वदेशी के प्रबल समर्थक थे। उन्हें विश्वास था कि स्वदेशी ही वह साधन है, जिसके द्वारा भारत की गरीबी और दरिद्रता को दूर किया जा सकता है। उनके अनुसार यह केवल आर्थिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक शक्तिशाली तथा प्रभावकारी हथियार था, जिसका इस्तेमाल संगठित और दृढ़तापूर्वक करना चाहिए। लाजपत राय ने स्वदेशी का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि स्वदेशी का वास्तविक आशय अपने देश में बने वस्तुओं का उपयोग करना है। यह केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक सीमित नहीं, बल्कि देश की आर्थिक शक्ति और आत्मसम्मान को पुनर्जीवित करने का प्रयास है।

स्वदेशी की भावना से देशवासियों में आत्मनिर्भरता, आत्मसहायता तथा आत्मसम्मान की भावना विकसित होती है। लाजपत राय की दृष्टि में स्वदेशी केवल वस्त्र, वस्तुओं या व्यापार के उपयोग तक सीमित नहीं, बल्कि यह व्यक्ति और समाज की सोच को स्वतंत्र बनाने वाला विचार था। वे कहते हैं कि स्वदेशी आंदोलन हमें यह सिखाता है कि हम अपनी शिक्षा, साधन, श्रम, शक्ति और प्रतिभा का उपयोग अपने राष्ट्रीय उत्थान के लिए करें। इस प्रकार स्वदेशी व्यक्ति को परावलंबन से मुक्त कर राष्ट्रीय स्वावलंबन की ओर ले जाता है।

लाजपत राय का मानना था कि स्वदेशी हमें धर्म, संप्रदाय और जाति के संकुचित बंधनों से मुक्त कर सकता है। यह केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि एक ऐसा राष्ट्रीय धर्म है, जो पूरे भारत का सामान्य धर्म बन सकता है। वे कहते हैं कि स्वदेशी आंदोलन को आत्माभिमानी, आत्मविश्वासी, स्वावलंबी और त्यागी बनना चाहिए, तभी यह देश के लिए उद्धारक सिद्ध होगा। उनके अनुसार स्वदेशी का लक्ष्य केवल विदेशी शासन का विरोध करना नहीं, बल्कि भारत के समग्र विकास, सम्मान तथा एकता की स्थापना करना है।

लाजपत राय इसलिए स्वदेशी को भारत की मुक्ति का मार्ग मानते थे और देश को यह संदेश देते थे कि स्वदेशी केवल एक आंदोलन नहीं, बल्कि राष्ट्रीय आत्मा की पुनर्जागरण प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से भारत स्वतंत्रता की ओर अग्रसर हो सकता है।

गाँधीवादी पद्धति का समर्थन

लाजपत राय और महात्मा गांधी के बीच विचारों का रिश्ता अत्यंत गहरा था। यद्यपि दोनों अलग-अलग युगपरम्पराओं और स्वभावगत विशेषताओं के असाधारण व्यक्तित्व थे, तथापि उद्देश्य एक था—भारत की स्वतंत्रता तथा समाज को आधुनिक और आत्मनिर्भर बनाना। लाजपत राय गांधीवाद को केवल एक राजनीतिक रणनीति के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति के रूप में देखते थे।

जब गांधीजी का सत्याग्रह-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और भारतीय जनता उससे गहराई से प्रेरित होने लगी, तब लाजपत राय ने गांधीजी को एक पत्र लिखकर यह स्वीकार किया कि यह आन्दोलन भारत के इतिहास में ही नहीं, बल्कि विश्व-इतिहास में भी एक अद्वितीय प्रयोग है। उनका कहना था कि सत्याग्रह के माध्यम से देश केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं कर रहा, बल्कि अपनी आत्मशक्ति, आत्मविश्वास और नैतिक गरिमा का उद्घोष कर रहा है। उनके अनुसार इस आन्दोलन ने हस्तकला, नैतिकता, सत्यभावना और जन-सक्रियता को पुनर्जीवन दिया।

लाजपत राय गांधीजी को इसलिए भी आदर देते थे कि उन्होंने संघर्ष को दमन और हिंसा के

बजाय आत्मसंयम, सत्य और अहिंसा पर आधारित किया। वे मानते थे कि यदि कोई भी राष्ट्र अपने संघर्ष को नैतिक आधार पर चलाए, तो उसे विश्वभर से नैतिक समर्थन मिलता है, और इसका परिणाम अंततः राजनीतिक विजय में रूपान्तरित होता है।

लाजपत राय एक सच्चे राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ सच्चे लोकतन्त्रवादी भी थे। वे स्पष्ट रूप से कहते थे कि किसी राष्ट्र को अपनी शासन-व्यवस्था अपने नैतिक आदर्शों के अनुरूप निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार है। राष्ट्रीय जीवन का आधार जन-सम्मति होती है, न कि हथियार, दमन या विदेशी शासन। इसके विपरीत भारत में ब्रिटिश राज जन-इच्छा पर आधारित नहीं था; वह बल, भय और दमन पर आधारित था। लाजपत राय इसे 'साम्राज्यवादी उपनिवेश-शासन' कहते थे, जिसका स्वरूप लोकतांत्रिक नहीं है।

पश्चिमी मत यह प्रचारित करता था कि भारत लोकतन्त्र की दृष्टि से अपरिपक्व है और ब्रिटिश शासन उसे प्रशिक्षित कर रहा है, परन्तु लाजपत राय ने इस भ्रामक विचार का खण्डन किया। उन्होंने प्रमाण देकर दिखाया कि प्राचीन भारत में—ग्राम पंचायत, गण-राज्य, और प्रतिनिधि-समितियों का वास्तविक शासन चलता रहा है। अतः लोकतन्त्र भारतीय समाज की गहरी परम्परा है, बाहरी उपदेश नहीं।

बोल्शेविकवाद और वैचारिक विश्लेषण

समाजवाद, साम्यवाद और बोल्शेविकवाद का अध्ययन लाजपत राय ने इस दृष्टि से किया कि यह मानवता को कहाँ ले जा रहा है। वे इन विचारधाराओं से प्रभावित अवश्य थे, किन्तु अन्ध-समर्थक नहीं। अपने ग्रन्थ 'सोशलिज्म तथा बोल्शेविकवाद' में उन्होंने स्पष्ट किया:

1. बोल्शेविकवाद ने विश्व को यह सिखाया कि पीड़ित राष्ट्रों और शोषित वर्गों की दशा सुधरनी चाहिए।

2. किन्तु यदि इसे तार्किक दिशा नहीं दी गई, तो यह अराजकता भी पैदा कर सकता है।

उनका सबसे महत्त्वपूर्ण चिन्तन यह था जब तक विश्व के राष्ट्र दासता, उपनिवेशवाद और आर्थिक शोषण से मुक्त नहीं होंगे, तब तक बोल्शेविकवाद का आकर्षण लोगों में बढ़ेगा। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि भारत समय रहते स्वतंत्र और स्वशासन-सम्पन्न न हुआ तो यहाँ बोल्शेविकवाद की उग्रता पनप सकती है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *एम. के. गांधी, यंग इंडिया, 1928*
2. *पट्टाभि सीतारमैया, History of the Indian National Congress, भाग-I, कॉन्ग्रेस पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली, 1946*
3. *लाला लाजपत राय, The Story of My Deportation, लाहौर, 1908*
4. *लाला लाजपत राय, Young India : An Interpretation and A History of the Nationalist Movement, न्यूयॉर्क, 1916*

5. डॉ. के. के. खत्री, लाला लाजपत राय का जीवन और कार्य, पंजाब यूनिवर्सिटी प्रकाशन, पटियाला, 1978
6. लाला लाजपत राय, यंग इंडिया, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1916
7. लाला लाजपत राय, England's Debt to India, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1917
8. लाला लाजपत राय, अनहैप्पी इण्डिया, मानोन प्रकाशन, लाहौर, 1928
9. लाला लाजपत राय, The Story of My Deportation, पंजाब प्रकाशन, लाहौर, 1908
10. के. के. खत्री, लाला लाजपत राय : जीवन और कार्य, पंजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन, पटियाला, 1978
11. आर. सी. मजूमदार, फ्रिडम स्ट्रगल, खण्ड-III, मुक्ति प्रकाशन, कलकत्ता, 1972
12. गोपालकृष्ण, Indian Nationalism and the Early Congress, एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, 1975
13. बी. आर. नंदा, लाला लाजपत राय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 1970